देखता हूं तुझे

मधुकर धर्मापुरीकर
(मराठी से अनुवाद : लीना मेहेंदले)

आंखों से देखो तो पास की चीज साफ साफ और दूर की धूमिल-धूमिल दीखती है। लेकिन मन की बात ठीक उल्टी होती होगी।

नहीं समझी ? इतनी मेरे पास होकर भी नहीं समझती ? यह भी एक और मजेदार बात। चलो, मैं समझाता हूं। सीधा सा हिसाब है। तुम्हें और बच्चों को वहां नांदेड में छोडकर यहाँ मैं अकेला रहता हूं। नौकरी के लिए। शनिवार, रविवार तुमसे मिल पाता हूँ। फिर यहाँ आ जाता हूँ। हफ्ता भर तुम्हारी यादें दोहराने लगता हूँ तो तुम्हें इतना साफ-साफ देख पाता हूँ कि हैरानी से पूछ बैठता हूँ-अरे क्या ये वही है ? फिर मन को बेचैन करने वाला यह खेल शुरू हो जाता है । तुम्हें ढूँढने का । या उसे ढूँढने का ?

वह, जो तुम्हारे अंदर छिपकर रहती है । अलग है वो तुमसे । यहाँ आता हूँ, तुम्हें याद करता हूँ, तुम्हारी एक एक बात, एक एक काम, एक एक तरीके को सोचता हूँ तो लगता है, सबके अर्थ अलग हो गये हैं । वैसे नहीं हैं, जो मैं वहाँ तुम्हारे पास रहने पर लगाता हूँ । फिर कुछ प्रश्न उभरते हैं । वे पहले क्यों नहीं उभरे ? यहां मेरे अकेलेपन का खेल बन कर क्यों उभरे ? तुम्हारे चलने का , बोलने का,हंसने का, चुप्पी का ,एक नया अंदाज , मैं यहाँ आकर ही क्यों देख सकता हूँ ? तुम्हारे वे सारे रंग यहाँ कितने गहरे हो जाते हैं । फिर मैं उन्हीं में उलझ कर रह जाता हूँ- जैसे कोई आफिस के काम में उलझे ।

लेकिन एक फर्क है दोनों में । तुम्हारी यादों में उलझ जाता हूँ तो उनसे बाहर निकलने को दिल नहीं चाहता और तुम भी कहां हाथ आती हो? बस कुछ धागे ही हाथ आते हैं । मीठे धागे -जैसे पाडवा के दिन बताशो की माला के धागे हों ।

"ओ ! इतना लम्बा मत खींचिए, मुद्दा क्या है बताइये ना !" - यही कहोगी ना तुम !

लेकिन मेरी लम्बी खींची हुई बातें सुनना तुम्हें अच्छा लगता है । उनसे मध चुनती रहती हो तुम । और मैं बस बोलता चला जाता हूँ - बोलता चला जाता हूँ

और यहाँ आकर खोजने लगता हूँ। उसे, जो तुमसे अलग तुम्हारे अंदर छिपकर रहती है।

फिर यही मीठे धागे उठाकर चल पड़ता हूं शनिवार- रविवार को तुमसे मिलने । वहाँ आकर मैं एकदम नटखट और बिगडैल बन जाता हूं - कुछ भी ठीक से नहीं सोच पाता - तुम देख देखकर केवल हँसती हो । फिर मैं बच्चों के साथ धींगा मुश्ती करने लगता हूं । एक दिन तुमसे भी कह बैठा - आओ फुगडी खेलते हैं - तो तुमनें वह डाँट लगाई कि बच्चे भी देर तक हंसते रहे कि देखो बाबूजी कैसे डाँट खा रहे हैं । मुझे भी तो इसी की खोज रहती है । अच्छी भली हँसती बोलती तुम एकदम आंखे तरेरकर मुझे डाँटने का भाव बना लेती हो । मेरे साथ लाये हुए वे मीठे धागे हाथ से फिसल जाते हैं ।

मैं चुप हो जाता हूं तब तुम पास आ जाती हो । कभी कहती हो, एल आय सी की नोटिस आई है, पेमेंट डयू हो गया है ।

वह नोटिस तुम हाथ में किस तरह पकडती हो, गंभीर चेहरा लेकर किस तरह खडी रहती हो , लगता है ,तुम इसी तरह नोटिस पकडे खडी रहो,पर्वाह नहीं यदि फाइन लग जाए । कमखर्ची भी एक ऐसा विषय है जिसमें तुम मुझे सदा हरा देती हो और मुझे भी तुम्हारी डाँट खाना अच्छा लगता है । यह तो वही हुआ कि कबड्डी का कोई खिलाडी सफाई से छूट कर भाग जाने के बजाय, अंदर घुस कर और पास आ जाय, हार जाने के लिये । लेकिन कमखर्ची की तरफदारी करते हुए तुम्हारे चेहरे में ही मैं खो जाता हूँ । अरे, यह नई कौन ?

परसों अचानक मोतियों का सेट पहने, सिल्क की साडी और केशों में गजरा टांगे तुम सामने आई और मैं देखता ही रहा । दाढ़ी बनाते हुए मेरा हाथ रूक गया ।

"जोशी जी के घर में शादी है - मुहूरत है नौ-बीस का । और पैरों में चप्पल सरकाकर तुम चली भी गई । तुम्हारे प्रफुल्लित चेहरे की वह हँसी । उस हँसी को पकड रखने में ही मै उलझ गया। गाल पर लगा साबुन भी सूख गया । कैसे इतनी उन्मुक्त हंसी हंस लेती हो तुम ? क्या वह तुम ही होती हो? और अपने ठिगनेपन में उस भारी साडी में कितनी छोटी सी लग रही थी तुम - मेरी आधी उमर की । आज की पीढी की लडकियां ठिगनी क्यों हैं , यह मेरा प्रस्तावित शोधग्रंथ का प्रिय विषय है - तुम कहती हो ताँकझाँक के लिए अच्छा बहाना है ।

और तुम्हारी रूलाई भी कितनी अजीब है । उस शनिवार शाम को मैं घर पहुंचा तो चप्पल भी नहीं उतारने दी तुमने " चलिये डाक्टर के पास अभी । देखिये ना मेरे अंगूठे का फोडा, सुबह से दर्द में तडप रहीं हूं।" मैं चल पडा । तुम तैयार ही बैठी थी कि साडी- वाडी बदल कर । ''अच्छा लग रहा है कि तुम तैयार रेडिमेड बेठी थी वरना तुम्हारी तैयारी .....और मेरी तनावग्रस्त नाराजगी ।"
"मजाक छोडिये, यहां मुझे कितनी तकलीफ हो रही है ।"

तुम्हारे चेहरे पर वेदना की एक लहर सी उभर आई और मुझे दुख हुआ तुम्हें चिढ़ाने का । यह पीड़ा भरा चेहरा मेरे लिये नया था। फिर से ढूँढने लगा मैं तुम्हें .....

डॉक्टर ने उस पके हुए फोड़े को हाथ लगाना था कि पीड़ा से स्सी ..... करते हुए तुमनें हाथ खींच लिया । तुम्हारी बातें, तुम्हारा व्यवहार, बिल्कुल तरल हो गये । मैं देख रहा था । डॉक्टर ने फोड़े को एक "कट" दिया और पीब निकाल कर ड्रेसिंग पूरी की । मैं देख रहा था तुम्हारा कराहना । "माँ री....धीरे से डॉक्टर साहब .....दुखता है ..... शब्द भी अस्फुट ही निकल रहे थे .....कँपकँपाये,रोते हुए असंबद्ध शब्द । मैं देख रहा था । अच्छे से गुलाब - फूलों की प्रिंट वाली सफेद -गुलाबी साड़ी, गोरा मुखड़ा , छोटी सी बिंदी और असंबद्ध शब्द ....

वे भी एक पीब की तरह ही थे ।

मेरी इन बातों से चिढ़ कर तुमने मुझे आँखें दिखाईं ।लेकिन उनमें क्रोध की जगह पानी था । मैनें तुम्हारा हाथ अपने हाथों में लिया । " देखो, डॉक्टर ने तुम्हारे अंगूठे को एक सफेद साड़ी पहनाई है .....और यह छोटी सी खून की बूँद - ये चमक रही है बिंदिया की तरह । '' मैंने कहा तो वही जलभरी आँखें अब गुस्सा लेकर मेरी ओर देखने लगीं ।
फिर पूरे हफ्ते सोमवार से शनिवार मैं उन्हीं आँखों को याद करता रहा । कैसा होता है ये देखना ? आँ ? वह गुस्से में भी पनीली आँखें , और फिर पनीली आँखों में गुस्सा .....? क्या यह भी तुम्हारे ही रूप हैं ? इतने वर्षों तक अनजाने ?

"आप अगला जनम औरत का लेना तब पता चलेगा औरतों के दुख दर्द का । खाली हँसने में क्या जाता है - तुम मर्दो का ?'' ये तुम्हारा प्रिय उलाहना है ।

एक दिन मैंने कहा - वो औरत जनम से मुझे आपत्ति नहीं है । लेकिन दिक्कत की एक बात है । मुझे बस के सफर में हर स्टेशन पर उतरना पड़ता है .....इसके लिये, मैंने कानी ऊँगली उठाकर दिखाई।

अच्छा था कि हम रास्ते पर गप्पें करते हुए जा रहे थे । वरना घर पर होता तो तुमने कसकर मेरी चिऊँटी काटनी थी । लेकिन फिर कभी तुमने मुझे औरत -जनम नहीं दिलवाया । मैं कितनी बार हँसा हूँगा उस ''जोक'' पर । तुम केवल पहली बार हँसी थी । बाकी समय ऐसे चेहरे से मुझे देखती रहती हो जो मैं समझ नहीं पाता ।

मेरे मजाकिया स्वभाव का एक फायदा है - कि तुम्हें खिलखिलाकर हँसते हुऐ मैं देखना चाहता हूँ सो देख पाता हूँ । लेकिन एक बडा घाटा भी है । मैं कोई गंभीर बात कहूँ तो तुम मुझे संदेह से देखती हो - मानों अब अगले ही क्षण मैं वापस कोई मजाक करने वाला हूँ । मेरी गंभीर बातों को भी तुम गंभीरता से नहीं लेती हो ।

लेकिन मेरे मजाक का उत्तर तुम मजाक से या मुझे चिढ़ाते हुए नहीं देती । बल्कि मेरे पास आकर देर तक अपने मन की सारी बातें कह देने की तुम्हारी आदत है । किसी गंभीर बात पर आवेश भरे चेहरे से बोलते रहना तुम्हें अच्छा लगता है ।

इसी लिये आज जो यह सब तुमसे बोल रहा हूँ, ये सारी गंभीर बातें, ये वहाँ तुम्हारे सामने आकर नहीं बोल सकता हूँ । तुम्हारे साथ होता हूँ, तो मैं खेल रहा होता हूँ - यहाँ एकान्त में ही मैं तुम्हें पढ़ सकता हूँ । हाँ , पढ़ना ही तो है । तुम्हारे खास खास शब्दों को सोचता हूँ - जीवन, दुख, ध्येय, मर्यादा आदि की बाबत तुम्हारे विचारों को सोचता हूँ -।

सोमवार से शुक्रवार - तुम मेरे पास होती हो और शनिवार, रविवार मैं तुम्हारे पास होता हूँ । फिर यहाँ आकर अपने रोजमर्रा के कामों में , कैसेट के गीतों में या उपन्यास पढते हुए तुम्हें उनमे ढूँढता रहता हूँ - जैसे तुम साड़ी साथ लेकर मैचिंग ब्लाउज-पीस ढूँढती हो ।

परसों एक उर्दू नज़्म पढ़ी और उन्हीं शब्दों में तुम्हें याद करता रहा -

मैं जब सोता हूँ थककर
तुम सिरहाने बैठ जाती हो
मेरी हमजाद हो शायद
तुम्हें क्या नाम दूँ आखिर ।

हमजाद का अर्थ समझती हो ना तुम ? आदमी के जनम से उसका साथ निभाने वाला फरिश्ता।

मेरे शब्दों की बरसात दिन के साथ-साथ खत्म हो जाती है । फिर तुम मुझसे बातें करने लगती हो किसी भी विषय को लेकर - पूरी गंभीरता से , आवेग से ।

मैं पूछता हूँ - तुम्हारे रूप कैसे कैसे बदलते हैं ? इनमें से मेरा कौन सा है ? तुम बोलती हो तब का या चुप रहती हो तब का । दिन भर काम करते समय तुम्हारी चुप्पी का रंग कौन सा है - गोरा या साँवला ? और रात को बातें करते समय तुम्हारी मुखरना का रँग कौन सा है - साँवला या गोरा ?

तुमसे पूछूँ तो कहोगी - चलिये कुछ भी सोचते रहते हैं आप । लेकिन सच्ची कहूँ , मैं ये खेल कई बार खेल चुका हूँ - बोलती हुई तुम और चुप्पी लगाई हुई तुम- दोनो में खो जाने का - दोनों को अलग-अलग ढूँढते रहने का । फिर तुम कहोगी चलिये, इतना नाटकीय अंदाज में मत बोलिये । या कहोगी - आप सिरीयस हैं या मजाक कर रहे है - कुछ नहीं समझ में आता । सीधा , साफ क्यों नहीं बोलते ?

मैनें जब कहा कि गंगाखेड़ जाने पर मैं खुद हाथ से बनाकर खाउँगा तो कितनी खुश हुई थी तुम- ''रिअली , होटल से मँगवाकर खाने में तबियत खराब हो जाती है । मै सिखा दूँगी आपको -चिन्ता ना करना।''

फिर तुमने रोटी बनाने का 'क्लास' लिया । तुम रोटी बेल कर दिखा रही थी और मैं केवल तुम्हें देख रहा था । यह पता चला तो तुमने ज़ोर से चिउँटी काटी थी मुझे - उन्हीं आटा सने हाथों से ।

मैंने भी सीख लिया। अच्छी तरह सीखा । अब खाना बनाते समय तुम्हारी आदतें, तुम्हारे हाव-भाव याद आने लगते हैं। झट से पल्लू से हाथ पोंछना, या चावल धोने से पहले उन्हें थाली में लेकर उनपर एक नजर दौड़ाना । तुम्हारी कितनी ही बातें । मेरे जहन में ये अब आ रही हैं । आज तक क्या मै गाफिल ही था इन सब से ?

'शनिवार की सांझ को घर पहुँचते ही मेरी धींगामुश्ती शुरू हो गई - बच्चों के साथ ! और गप्पों की बारिश । धुआँघार बारिश .....तुम केवल सुनती हो और मीठा मुस्कुराकर हाथ में चाय की प्याली पकड़ा देती हो ।

और रात को मेरे पास आकर बतानें लगी - अपनी माँ के बारे में । पाँच दिनों से वे यहीं थी- तबियत खराब हो गई थी । डाक्टर को दिखाना था । अप्पा भी आये थे - वही ले गये माँ को डॉक्टर के पास । माँ का दर्द देखा नहीं जा रहा था, दोपहर से उसका ही चेहरा नाच रहा है आँखों के सामने ।

मैं अवाक् । दोपहर को ही तुम्हारी माँ और अप्पा गाँव वापस चले गये थे । मैं याद करने लगा - आते ही मैं क्या क्या बोलता और हँसता रहा था .....एक अपराध बोध मेरे मन को छूने लगा - ''फिर तुमने मुझे आते ही क्यों नहीं बताया ?"

आप भी कितने थक कर आते है.....पाँच दिन काम और फिर बस का सफर । आते ही कैसे बता देती ? - कितनी विचारशील और प्रौढ़ा लग रही थी तुम । यह रूप भी मेरे लिये नया था ।

गंगाखेड आकर खुद पर ही गुस्सा आया मुझे । वहाँ घर में क्या स्थिति है, लोग कैसे रहते हैं कुछ भी बगैर पूछे मैं जाते ही हँसने-खेलने लग जाता हूँ । तुम्हारे मन की चिंता को पकड़ नहीं पाता हूँ और तुम भी क्या..... दूध को ढककर रखने की तरह अपने दुख पर भी ढक्कन रख लेती हो, चाय बनाती हो, एक कौतुक भरी निगाह भी मुझे दे देती हो । कैसे कर लेती हो ये सब?

तुम्हारी माँ की तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब हुई तो महीने भर रहना पड़ा उन्हें अपने यहाँ । तब देखता था तुम्हारी गड़बड़ । माँ की सेवा टहल, बच्चों के काम, घर के मेरे काम, सारा कुछ तुम थोड़ा ज्यादा ही झटपट कर ले रही थी । ऊपर मुझसे पूछ रही थी - "माँ को देखते देखते कहीं आप लोगों को नेगलेक्ट तो नही कर रही मैं ?"
क्या बताऊँ कि कैसा लगा यह सुनकर ? क्यों कहा तुमने ऐसा ? यहाँ आकर पूरे हफ़्ते भर वही वाक्य मेरा पीछा करता रहा ।

ठीक होकर माँ गाँव चली गई । उस शनिवार रात तुम रोते हुए उठ बैठी नींद से । आधी रात के बाद.. कहने लगी - मैनें बुरा सपना देखा है कि माँ नही रही ।
रात का वह सन्नाटा, वाचमेन की सीटी और कुत्तों का रोना---- मैनें तुम्हें बाहों में लेकर थपकियों से सुला दिया । थोड़ी देर में तुम फिर उठ बैठी मुझे ना, एक कहानी सूझी है - उऋण । पता है क्यों? जब तक माँ यहाँ रही- मैनें ही उसका सब कुछ किया- जैसे मेरे बचपन में उसने किया होगा । अब मैं उसकी माँ बन गई थी और वह मेरी बच्ची । इसी पर कहानी लिखी जा सकती है------। और चलते चलते अण्णा ने मुझे एक साड़ी खरीद कर दी ।

मैनें फिर तुम्हें थपकी दी - मुझे मालूम है - अण्णा को तुमपर बहुत अभिमान है - मुझसे कहते रहते थे "हाँ ! " तुमने पूछा और खुश होकर फिर सो भी गई । बिल्कुल बच्चों की तरह। बस, यही याद करता रहता हूँ ।

और वे दो दिन? वे तो मैं कभी नहीं भूल सकता । उस शनिवार बच्चों को लेकर नांदेड से तुम ही आ गई थी यहाँ । यह भी सबके लिये अलग तरह का पिकनिक था । मेरे इकलौते कमरे वाले घर को महका दिया था बच्चों के और तुम्हारे अस्तित्व ने । वे भी खुश थे । रोज सुबह मेरे कमरे के सामने आकर दूधवाली कैसे आवाज लगाती है, पानी का नल कैसे खाँस खूँस कर पानी देता है, सब्जीवाला, धोबी, सबकी ॲक्टिंग करके मैं पहले ही दिखा चुका था । यहाँ आकर बच्चे उसी को आजमा रहे थे- हँस रहे थे और तुम भी मानों अपने बचपन में वापस जाकर गुड़िया-गुड़िया खेल रही थी । तुम्हारी सहजता मैं देख रहा था । स्नान के बाद कोने में रखे भगवान के फोटो को हाथ जोड़ना, माथे पर बिंदी चिपकाना, खाना बनाना, हमारे खेलों में शामिल होना । यह तुम्हारे अंदर दूसरी तुम कौन है ?

नांदेड लौटते समय मुझे तमाम सूचनाएँ देना - थोड़ा आचार बना कर उस बोयाम में रख दिया है, मेतकूट भी बना कर रखा है - दही भात के साथ खा लिया करना । आटा पिसा लिया है, पंद्रह दिन चलेगा । आपके लिये थोड़े सूजी के लड्डू बनाकर रखे हैं -फिर डिब्बा खोलकर एक लड्डू निकालती हो और एक छोटे खाली डिब्बे में रख लेती हो "यह क्या ?" "माँ का डिब्बा है, लौटाना है, खाली कैसे लौटाऊँ? अब जाते ही भिजवा दूंगी ।" सारा कुछ कितनी सहजता से।

तुम्हें नांदेड पँहुचाकर सोमवार को लौटा तो सीधा ऑफिस चला गया । खाना बनाना आज भारी लगेगा । बाहर ही कुछ खाकर आया और रात को सीधे पलंग पर पड़ गया । लाइट जलता हुआ छोड़कर----

उजाले में तुम्हारी एक एक गतिविधियाँ फिर से साफ साफ दिख रही थीं । तुम कहाँ बैठी थी - क्या क्या किया? कैसे मेरा बेतरतीब कमरा ठीक ठाक कर दिया था। समूचे कमरे में तुम्हारे अस्तित्व को महसूस करता हुआ ही सोया था मैं ।

सुबह दूधवाली ने पूछा - गए सारे लोग? इतनी जल्दी?
स्नान करके मैंने आईना देखा तो कोने में तुम्हारी बिंदी चिपक रखी थी । गई कहाँ थी तुम?

रोटी बनाने चला । आटे का डिब्बा खोला । देखा ....
डिब्बे में दबा-दबा कर तुमने आटा भरा होगा । आटे के ऊपर तुम्हारे दोनों हाथों के छापे उभरे थे - तमाम हस्तरेखाओं सहित ।

मुझे बताओ, दो दिन तक तुम यहाँ रही - ये वो करती रही - मैं तुम्हें देख रहा था । फिर आटे पर हाथ उभारते समय तुम मुझे कैसे नहीं दिखीं? या आटे पर तुम्हारे हाथ तुम्हारे बिना छुए ही उभरे थे? उस दिन मैनें खाना नहीं बनाया - इच्छा नहीं हुई बनाने की । मुझे बताओ कि बिना मुझे खबर हुए कैसे तुम्हारे हाथ फिरते रहते हैं मुझपर !

मूल मराठी कथा : मधुकर धर्मापुरीकर, नांदेड,
प्रकाशन : मासिक अंतर्नाद, पुणे
हिन्दी अनुवाद लीना मेहेंदले, ई -१८, बापू धाम, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली